ISSN: 2456-9186, Vol. II, Issue. I, June-2018

वागर्थः

(An International Journal of Sanskrit Research)

Journal Homepage: http://cphfs.in/research.php

धर्म-निरपेक्षशब्दमीमांसा

डॉ. मीरा दुबे (उपाध्यापक)
बरोडासंस्कृत महाविद्यालय
महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय,वड़ोदरा
Email: meeradubey33@yahoo.com

शोधसार: "धर्म-निरपेक्ष" शब्द का भारतीय परिपेक्ष्य में विश्लेषणात्मक अध्ययन । "धर्म-निरपेक्ष" शब्द का भारतीय परिपेक्ष्य में विश्लेषणात्मक अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि जहाँ "धर्म" आचार-व्यवहार और भावना, जो शुद्ध लोक-कल्याण हेतु किया गया धारणा है, वही निरपेक्ष शब्द अपेक्षाशून्य-आशाविहीन-अभावयुक्त शब्द है जिसका अर्थ और व्याख्या भिन्न है । "शब्द" भारतीय दर्शनशास्त्र में प्रमाण और नित्य होते है । धर्म-दर्शन आत्मा,कर्म,एवं पुनर्जन्म के सिद्धान्तो पर आधारित व्यवस्था शास्त्र है ।

मूल-शब्द: भारतीय-संविधान, धर्म, धर्म के स्वरूप, निरपेक्ष, अधर्म ।

I. प्रस्तावना

भारतीयधर्मशास्त्र में धर्म और न्याय एक दूसरे के पूरक रहे है। न्याय"नियमेन ईयते इति" [1] अर्थात् जो नियम से चले या जिसे नियम से चलाया जाय वह न्याय और धर्म जिसे धारण किया जाय,जो सर्व-जन हिताय हो वह धर्म है। ऋग्वेद के पंचम मण्डल में धर्म शब्द को "निश्चित नियम" के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। जहाँ न्याय "प्रमाणैरर्थपरीक्षणं न्यायः" [2] वही धर्म भी "वेदप्रतिपाद्य: प्रयोजनवदर्थो धर्मः" [3] । न्याय और धर्म प्रमाणों और लक्षणों के आधार पर व्यवस्थित होते है जिसका उद्देश्य शांति और संतोष होता है। जो धर्म न्याययुक्त है वह धर्म-निरपेक्ष कैसे हो सकता? जहाँ धर्म शब्द भावयुक्त है,वही निरपेक्ष शब्द अभावयुक्त। अतः धर्म के साथ निरपेक्ष(अपेक्षा-शून्यता) शब्द का प्रयोग न्याय संगत न होने के कारण "धर्म-निरपेक्ष" शब्द भारतीय परिपेक्ष्य में विश्लेषणात्मक अध्ययन आवश्यक हो जाता है ।

II. भारतीय-संविधान

भारतीय संविधान के प्रस्तावना मे "धर्म-निरपेक्ष" शब्द ४२ घण्टे के संशोधन के बाद १९७६ मे यह "धर्म-निरपेक्ष" शब्द का प्रदुर्भाव भारतीय संविधान मे हुआ । जे. एन. पाण्डे की "Indian Constitution" के अनुसार संविधान धर्म-निरपेक्ष राष्ट्र कभी भी अधार्मिक राष्ट्र की परिभाषा नही करती, न ही धार्मिक संबन्धो मे मध्यस्थता करता है। धर्म-निरपेक्ष शब्द किसी भी प्रकार का रहस्य नही है,और न ही धर्म-निरपेक्ष राष्ट्र ईश्वरवादी विचारधारा तथा अनिश्वरवादी विचारधारा का विरोधी है, अपितु यह दोनो ही विचारधाराओ को सुरक्षित रखता है। संविधान धर्मो के विषय मे भेद-भाव नही रखता, सर्व धर्म सहिष्णुता के भाव को समाये हुआ है । संविधान व्यक्ति का व्यक्ति से संबन्धित विषयो पर प्रमाणाधारित विश्लेषण प्रक्रिया है । धर्म व्यक्ति और ईश्वर के मध्य की, यह कहते हुए "धर्म-निरपेक्षता" शब्द संवैधानिक रूप से हमारे संविधान में जुड गया, [5] जिसे आत्मसात करना कठिन है क्योकि यह व्याख्या हमारी भारतीय संस्कृति एवं परंपरा का परिचायक है पर "धर्म-निरपेक्ष" शब्द की व्याख्या नही। व्यक्ति जहॉ संविधान मे है, वही व्यक्ति धर्म मे भी है । जब प्रयोगशाला और उद्देश्य समान है तो मतभेद कहाँ और क्यों है?

III. धर्म / धर्म स्वरूप

भारत की अपनी एक वैचारिक परंपरा रही है जहाँ "यतोऽभ्युदयनिःश्रेयसिद्धिः स धर्मः"अर्थात् अभ्युदय की सिद्धि जो करे वह धर्म है। यह एक वैशेषिक दर्शन का विचार है । इससे धर्म की व्यापकता, उदारता स्पष्ट है, मनु कहते है कि आचारो परमो धर्मः [4], ऋग्वेद में कहा गया है "केवालाघो भवति केवलादि" स्वयं (अकेला) खाने वाला पापी होता है अर्थात् वैदिक परम्पराओं

से एक उदार मानवीय परिभाषाए प्राप्त होती है। पर प्रश्न उठता है कि धर्म है क्या ? धर्म शब्द का अर्थ Religion शब्द से भिन्न है।

धर्म भावना है। भावना उत्पन्न होने वाले कार्य और उत्पत्ति में सहायक उत्पादयिता (उत्पादक)का विशेष प्रकार का व्यापार है। "धर्म" शब्द ध्रियते अनेनेतिधृञ् (धारणपोषणयोः धातोः) मन् प्रत्यय से धर्म शब्द का तात्पर्य है भावना, आचार,व्यवहार तथा भ्वादिगणीय धृञ् धारणे धातु से निष्पन्न हुआ है, धर्म शब्द का मूल अर्थ है "धारण करनेवाला"। धर्म एक भाव है जिसे हम धारण करके किसी कार्य के लिए प्रेरित होते है बिना भावना के,बिना धारणा के तथा बिना प्रेरणा के कार्य सम्भव नही । भावना, धारणा, प्रेरणा इच्छा को उत्पन्न करती है, धीरे-धीरे यही व्यक्ति के व्यक्तित्वा का निर्माण करती है। दूसरा प्रश्न उठता है कि क्या धारण करना है और क्या नहीं धारण करना है? यह कार्य हमारे शास्त्रीय ग्रन्थ बताते है।जो हमें प्रेरित करते है मानवीय और कल्याणकारी गुणों की ओर, जो मात्र व्यक्तिगत न हो, समष्टिगत हो, जो ब्रह्माण्ड शान्ति में सहायक हो । इसलिए धर्म मात्र व्यक्ति और राष्ट्र का ही नही अपितु सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का भी संरक्षक है। धर्म धारण करने वाला व्यक्ति तथा व्यक्ति की चित्त-वृत्तियां महत्वपूर्ण हो जातेहै। इसीलिए धर्म के स्वरूप को मनुस्मृति में निम्नलिखित कहा गया है। धर्म धृति (संतोष)है, धर्म क्षमा है, धर्म दम है, धर्म अस्तेय है, धर्म शौच है, धर्म विद्या है, धर्म सत्य है, धर्म अक्रोध है। धर्म वह भाव है जिससे व्यक्ति कार्यो में प्रवृत होता है और यह धर्म भी मनुष्य अपने प्रकृति के अनुसार धारण करता है। इसे स्पष्ट करने के लिए मानवीय सुख-दुःख-उदासीन भावयुक्त विषयो का अध्ययन उदहारण द्वारा स्पष्ट करने का प्रयास करुगी जैसे - एक व्यक्ति जो तैरना की कला जानताहै वह दरिया में आनंदयुक्त सुख का अनुभव करेगा पर जो तैरना नही जानता वह दुःख,परन्तु जल में रहने वाले जीव (मछली) के लिए सामान्य भाव है । ये तीनो अवस्थाए विद्यमान है सुख-दुःख तथा प्राकृतिक विषयो की ओर आकृष्ट होना व्यक्ति का सहज गुण है जिसे धारण कर किसी कार्य में प्रवृत्त या निवृत्त होता है और यह भाव व्यक्ति में सत्त्व-रज-तम के कारण इस संसार में व्याप्त होता है यही त्रिगुणात्मक स्वरुप ही व्यवहार द्वारा दृष्ट है । इन त्रिगुणात्मक युक्त मनुष्य स्व-स्व प्रकृत्यानुकूल मन-वचन-शरीर द्वारा शुभ-अशुभ कर्म में प्रवृत्त या निवृत्त होता है। इस भाव को सहज ही निरपेक्षयुक्त नही किया जा सकता ।क्योकि धर्म शब्द इंगलिश के Religionशब्द से भिन्न है । अत: इसकी व्याख्या ठीक से करनी होगी।

भारतीय संविधान में ईश्वरवादी या अनीश्वरवादी विचारो का विरोध नही अपितु दोनों को सुरक्षित रखता है यह भाव ही धर्म है। इसी लिए हमारे यहाँ बौद्ध, जैन और चार्वाक विचार धाराए पोषित रही हैं । "धर्मो रक्षति रक्षित:" [4],"वसुधैव कुटुम्बकम्" यासर्वे भवन्तुसुखिन:.....इति भाव के प्रति निरपेक्षता क्या उचित है? धर्मशास्त्र में धर्म न्याय है अत: "धर्मनिरपेक्षता" शब्द गम्भीर्य प्रश्न के साथ हमारे संविधान १९७६ में व्याप्त हो गया। [7]

IV. निरपेक्षता

निर्+अप +ईक्ष् धातु से मिलाकर निरपेक्ष शब्द की व्युत्पत्ति हुइ है। निर् (उपसर्ग) = निर्गतः अप+ईक्ष् =अपेक्षते इति अपेक्षा, निर्गतः अपेक्षायाःइति निरपेक्षः। निरपेक्षस्य भाव निरपेक्षता । निर्गता अपेक्षा यस्या अनपेक्षा समास होकर धर्म-निरपेक्षता अर्थात् धर्म मे निरपेक्षता ।अत: व्यक्ति में लोककल्याण,मानवीय एवं इष्टतम भाव के प्रति निरपेक्षता भाव, अधर्म को निमंत्रण देनाहै । संविधान विशेषज्ञ कहते है कि धर्म-निरपेक्षता अर्थात् सर्व धर्म सम्भाव,पर हम इसे गलत समझतेहै (सर्व धर्म अभाव)। जस्टिस धर्माधिकारी (Aruna Roy v.Union of India) कहते है कि " मै अपने पचास साल के अनुभव में "Secularism" शब्द को वर्क करते नही देखा,यह मात्र शब्द बन कर रहगया है।"भारतीय परम्परा में शब्दों का बहुत महत्व है जिसे उच्चारण करने से पहले उसके गंभीरता को समझना चाहिए क्योकि हमारे यहाँ "शब्द" प्रमाण और नित्य है।धर्म-निरपेक्षशब्द क्रूर(हिंसा) इतिहास की याद दिलाता है धर्म-निरपेक्ष शब्द इंगलिश के secularism का हिंदी रूपांतरण है। यह शब्द सबसे पहले सन् १६४८ में वेस्टफेलिया की संधि से शुरू हुई और १७७६ में स्वतन्त्र अमेरिका की घोषणा होने के बाद मत-मतांतर को देखते हुए secularism शब्द का प्रयोग अमेरिकी संविधान में हुआ।

V. अधर्म का प्रादुर्भाव

जब लोक-कल्याणकारी भावना का अंत हो जायगा तो अंधकारमय अवस्था इस लोक में अकल्याणकारी, अमानवीय, तथा अनिष्टतम प्रवृतियों को जन्म देगी अर्थात् अधर्म की स्थिति, धर्म का अभाव, अन्धकारयुक्त, अज्ञेय, चिन्हरहित, प्रमाणादि तर्को से रहित अविज्ञेय सुप्तावस्था है जिसे मनुस्मृति में कहा गया है ---आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम् । अप्रतर्क्यमविज्ञेयंप्रसुप्तमिवसर्वतः।। [4] धर्म का अभाव तमोगुण है, धैर्य का अभाव है, मोह का प्रादुर्भाव है, प्रमादयुक्त होना तथा विचार शून्यता है।

निष्कर्ष

भारत अपनी सभ्यता और संस्कृति के लिए जाना जाता है जिसका पौराणिक,दार्शनिक,ऐतिहासिक,एवं आध्यात्मिक महत्व है। जहाँ शब्द प्रमाण और नित्य माने जाते है। जो आज भी अध्ययन एवं शोध का विषय बना हुआ है। वहाँ धर्म के साथ +निरपेक्ष शब्द भाव-अभाव का और ज्ञान-अज्ञान का बोध करता है जो उचित नही । जहाँ द्वादश दार्शनिको की विचारधाराए समाये हुए है। दार्शनिकवैचारिक एवं आध्यात्मिक परंपराए उदाहरण प्रस्तुतकरती है। वह भारत सहिष्णु तो था ही । न्याय और धर्म शब्द विधि के रूप में एक मत प्रस्तुत करतेहै। विधि "अज्ञातार्थज्ञापको वेदभागो विधिः" अर्थात् वेद का वह विभाग,जो अज्ञात का ज्ञापक हो, वह जो ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान प्रेरक युक्त हो। जहाँ बहुत (सात्विक-राजसिक-तामसिक)विचार हो पर एक निश्चित नियम ही गम्य हो, वह जो प्रेरक मानवीय-कल्याणकारी हो । यह क्या बिना भाव और व्यवहार के सम्भव है क्या? व्यवहार भी धर्म है व्यवहार अर्थात् वि नानार्थेSवसंदेहे हरणंहार उच्यते।

नाना सन्देहहरणाद् व्यवहार इति स्मृति ।। [6] विविध संदेहों का निराकरण ही व्यवहार है। विविध विचारो के मध्यसे साक्ष्य (प्रमाणो)द्वारा न्याय होता है और वेदपतिपाद्य-प्रयोजनवत्-अर्थ (इष्टतम) ही धर्म है। जब दोनो का उद्देश्य शान्ति और मानवीयहितो की रक्षाकरना है तो यह एक भाव है जो धारण कर विचार द्वारा व्यवहार तथा क्रिया मे कार्यान्वित होता है। धर्म न केवल मानवीय अपितु जीव-जन्तु,पेड़-पौधे,तीनोलोको,और कालोको ध्यान मे रखकर धारण किया जाता है।भारत की अपनी प्राचीन परम्परा रही है जिसमे धर्म अपने दार्शनिकस्वरूप के साथ आत्मा,कर्म,एवं पुनर्जन्म के सिद्धान्तो पर आधारित है जिसे स्पर्श करना मात्र,समस्याओ का आमंत्रण देना है।अत: धर्म के साथ "निरपेक्ष" शब्द उचित नही है,अतः यह पुनःविचारणीय विषय है जिसे भारतीय परिपेक्ष्य में चिंतन-मनन-विश्लेषनके साथ शोध करना होगा। संविधान हमारे धर्मशास्त्रीय दृष्टिकोणसे आदरणीय तथा माननीय है । जिसका अनुसरण करना हमसभी भारतीयों का परम कर्त्तव्य है। वैचारिक संशोधनात्मक दृष्टिकोण से इसविषय पर शोध होना सार्थक होगा ।

संदर्भ ग्रन्थ

[1]. धर्मशास्त्रो में न्यायव्यवस्था का स्वरूप, शशि कश्यप, न्यू भारतीय बुक कार्पोरेशन दिल्ली २०००, (शब्द कल्पद्रुम,काण्ड-२)

[2]. धर्मशास्त्रो में न्यायव्यवस्था का स्वरूप, शशि कश्यप, न्यू भारतीय बुक कार्पोरेशन दिल्ली २०००, (न्याय भाष्य 1.1.1)

[3]. लौगाक्षिभास्कर का अर्थसंग्रह,व्याख्याकार डा.कामेश्वरनाथ मिश्र,२०१६ चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी

[4]. मनुस्मृति, कुल्लुकभट्टकृत "मन्वर्थमुक्तावली"पं.गोपालशास्त्री नेने संपादक, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी

[5]. जे. एन. पाण्डे, Constitutional law of India, 38th edition, The Central Law Agency, Allahabad

[6]. कात्यायन,व्यवहार मयूख पृ० २८३,मनुस्मृति ८ /१ (कुल्लुकभट्टकृत "मन्वर्थमुक्तावली"पं.गोपालशास्त्री नेने संपादक, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी)

[7]. राजेन्द्र ऋषि सद्गुरुजी का लेख "धर्म-निरपेक्षता और पंथनिरपेक्षता में अंतर" (E-Article)